चर्चित चेहरा
बेनेडिक्ट जेबाकुमार

इंजीनियर की अनोखी गांधीगीरी

सुनीता कपूर

सड़क पर कीलें बिछाकर गाड़ियां पंक्चर करने का तरीका काफी पुराना है। बेनेडिक्ट जेबाकुमार भी ऐसी ही साजिश का शिकार हुए। बात 2012 की है। वह अपनी नौकरी के सिलसिले में पहली बार बेंगलूरू आए थे। हर रोज सुबह जब वह बेंगलरूर में बेल्लांदुर स्थित अपने ऑफिस जाते थे तो आउटर रिंग रोड पर सिल्क बोर्ड के सामने उनकी बाइक हर बार पंक्चर हो जाती थी। शुरू-शुरू में उन्होंने यही सोचा कि शायद टायर खराब हो गया है, लेकिन लगातार जब उनके साथ यह घटने लगा तो उन्हें अहसास हुआ कि माजरा कुछ और है। जेबाकुमार ने पाया कि ऐसा पंक्चर बनाने वाली दुकान के आसपास ज्यादा होता है और एक ही तरह की कील निकलती है। तब उन्हें यह समझते देर ना लगी कि जानबूझकर पैसे बनाने के लिए कुछ लोगों द्वारा यह किया जा रहा है।

कई बार शिकायत के बाद भी कोई एक्शन नहीं लिया गया और दो सालों तक उनके स्कूटर में ऐसे ही पंक्चर होते रहे तब 44 साल के पेशे से सिस्टम इंजीनियर बेनेडिक्ट जेबाकुमार ने खुद ही एक फैसला ले लिया। उन्होंने अपने आने-जाने का रास्ता नहीं बदला बल्कि समस्या खुद निपटाने का उपाय सोचा। वह अपने हाथों से रास्ते पर पड़ीं सारी कीलों का सफाया करने में जुट गए। अथॉरिटी ने मदद नहीं की तो फेसबुक पर कैम्पेन चलाई। 2014 में माई रोड, माई रिस्पॉन्सिबिलिटी (मेरी सड़क, मेरी जिम्मेदारी) नाम से एक पेज बनाया, जहां वह हर दिन मिली कीलों के बारे में जानकारी देते हैं। साथ ही कीलों का वजन भी तस्वीरों के साथ अपलोड करते हैं। तब से शुरू हुआ उनका यह अभियान आज भी बदस्तूर जारी है।

शुरुआत में कीलों को चुनने के लिए वह हाथों का इस्तेमाल किया करते थे, लेकिन अब वह फोल्डेबल मेग्नेटिक स्टिक का इस्तेमाल करते हैं। वह रिंग रोड ही नहीं, बल्कि शहर के कई हिस्सों में यह कैम्पेन चला रहे हैं। जब उन्होंने कील बीनने का काम शुरू किया तब उनका बैग कीलों से भर जाता था। पर वह कभी भी सड़क पर से सारी कीलें बीने बिना वापस नहीं आते थे। 21 मार्च को उन्होंने 1,654 कीलों को सड़क पर से एकत्र करके एक रिकॉर्ड बनाया था। तब से लेकर अब तक वह 37 किलो से ज्यादा कीलें इकट्ठी कर चुके हैं।

बेनेडिक्ट का कहना है कि यह समस्या उतनी भी बड़ी नहीं है। यह सिर्फ अधिकारियों की सुस्ती या ध्यान नहीं देने का नतीजा है। यह कीलें किसी भी गाड़ी के नीचे आ सकती है और इससे गंभीर दुर्घटनाएं हो सकती हैं। उनके मुताबिक, कील का सड़कों पर होना बदमाशों की चाल है। अतीत में दो गिरफ्तारियां हुई थीं, लेकिन तीन महीने के भीतर ही उन्हें छोड़ दिया गया और अब आलम यह है कि कील फिर से सड़कों पर दिखने लगे हैं। वह कहते हैं कि पंचर बनाने वाली दुकानें अपनी कमाई के लिए ऐसा करती हैं। पंक्चर की दुकानों के लिए सीसीटीवी कैमरे और सरकारी मान्यता के अभाव में लोगों की परेशानी कम नहीं हो रही है।

बेनेडिक्ट जेबाकुमार जब सड़क पर कम ट्रैफिक होता है तब वह कील बीनने के काम में जुटते हैं। उनके अनुसार, मेरा उद्देश्य लोगों में इसके प्रति जागरुकता फैलाना है। मैं तब तक ऐसा करना नहीं छोड़ूंगा, जब तक प्रशासन इस पर संज्ञान न ले।

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है ये सूरत बदलनी चाहिए... दुष्यंत कुमार की यह पंक्तियां एक इंजीनियर की जिंदगी पर फिट बैठती हैं, जिसने समस्या को खत्म करने का एक नायाब तरीका निकाला। पिछले तीन सालों से वह बेंगलूरू की सड़कों पर जहां-तहां बिखरीं कीलों को बटोर रहे हैं। अब तक सड़कों पर से उन्होंने 37 किलो से ज्यादा कीलें चुन डाली हैं। आखिर क्यों वह ऐसी अनोखी गांधीगीरी कर रहे हैं, इसके पीछे उनकी एक दर्दभरी दास्तां है जिसे उन्होंने दो साल तक झेला है...

'शुरुआत इन पंक्तियों से करते हैं, 'करवट ली है वक्त ने, रही न अब वो बात। जीत रहे खरगोश अब, कछुए खाते मात।' गठबंधन तो हो गया, पर रिश्ते बेमेल। चली छोड़कर पटरियां, संबंधों की रेल।' राजनीतिक गठबंधनों की कहानी कुछ ऐसी ही है। आज साथ-कल अलग। ये रिश्ता भी अजीब है, जिसका मतलब निभाने वाला ही बता सकता है। चुनावी बयार से पहले एवं नतीजों के बाद पार्टियों का गठबंधन अरसे से होता आया है। बदलते दौर में लेकिन राजनीतिक पार्टियों के साथ आने की वजहें बदल रही हैं।

ये रिश्ता क्या कहलाता है

प्रेम प्रकाश त्रिपाठी

जनता के लिए लिए राजनीतिक दलों का गठबंधन हमेशा से अबूझ पहेली रही है। धुर विरोधी दलों का एक होना लोगों को हमेशा चौंकाता रहा है। ताजा उदाहरण उत्तर प्रदेश में सपा और कांग्रेस का है। 2012 के विधानसभा चुनाव में यही पार्टियां अलग-अलग लड़ी थीं तो इस बार साथ हैं। अभी चंद दिनों पहले ही कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी ने पूरे यूपी में घूमकर '27 साल यूपी बेहाल' का नारा दिया था। जनता उसे समझने की कोशिश ही कर रही थी कि एक नया नारा सामने आया है, 'यूपी को यह साथ पसंद है।' यानी अखिलेश और राहुल। एक-दूसरे के दलों को कोसने वाले ये नेता अब प्रदेश में सपा-कांग्रेस गठबंधन की बहुमत वाली सरकार बनने का दावा कर रहे हैं। आखिर इस रिश्ते को क्या कहा जाए। उनकी सुनें तो, दोनों पार्टियां बसपा और भाजपा को रोकने के लिए साथ आई हैं। यह कहा जा रहा कि यह 2019 का पूर्वाभ्यास है। तब भाजपा को केंद्र से बेदखल करने का मौका होगा। और गहरे तल पर स्थानीय पार्टियों (कौमी एकता दल, पीस पार्टी, समानता दल, अपना दल) के कारण होने वाला वोटों का बिखराव रोकना भी है।

प्रसंगवश

वैसे गठबंधन करने की परंपरा ने 1989 के आम चुनावों से चर्चा बटोरी थी। तब चुनाव बाद गठबंधन हुए थे। यह जनता के नतीजों से इतर जुगाड़ पर चली सरकारें थीं। 1989 में कांग्रेस से अलग हुए विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कई पार्टियों को एक कर जनता दल बनाया और बीजेपी के साथ मिलकर सरकार बना ली। हालांकि यह गठबंधन साल भर में ही टूट गया। बीजेपी ने सरकार से हाथ खींच लिए थे। सबको लगा दोबारा चुनाव होंगे, लेकिन चुनिंदा सांसदों वाले चंद्रशेखर ने कांग्रेस से बाहर से समर्थन लेकर सरकार बना ली। यह भी कुछ दिन ही चली। कई साल पहले लोकसभा के अध्यक्ष रहे (अब स्वर्गीय) पीए संगमा ने कहा था कि भारत में भविष्य की राजनीति गठबंधन की ही होगी। आज उनकी बात साबित होती दिख रही है।

पंजाब में अकाली-भाजपा हो या बिहार में आरजेडी-जेडीयू या जेडीयू-बीजेपी। दो दलों ने साथ मिलकर सरकार बनाई और चला रहे हैं। महाराष्ट्र में बीजेपी और शिवसेना का साथ पुराना है। यह और बात है कि अब दोनों के रिश्ते सामान्य नहीं हैं और बीएमसी चुनावों से पूर्व खटपट चरम पर है। केंद्र में यूपीए एक और यूपीए दो गठबंधन की ही सरकार रही है। एनडीए भी बीजेपी और दूसरी पार्टियों का सफल गठबंधन है।

अब जरा इस तथ्य को समझें। 2004 से लेकर 2015 के बीच भारत के बड़े राज्यों में हुए चुनावों में 1 प्रतिशत अधिक वोट पाकर जीतने वाली अधिकांश पार्टियों में से आधी पार्टियों के बीच चुनाव-पूर्व गठबंधन ही हुआ था। बिहार इसका बड़ा उदाहरण है। दरअसल, जिन राज्यों में दो प्रमुख पार्टियां होती हैं। वहां ऐसे गठबंधन नहीं होते। उदाहरण के लिए उत्तराखंड और हिमाचल। लेकिन जहां छोटी पार्टियों का जमावड़ा होता है, वहां गठबंधन मजबूरी भी बन जाता है। यूपी में भी ऐसी मजबूरी साफ दिखती है। गठबंधन का सबसे बड़ा फायदा यह है कि तैयारी कितनी ही कमजोर क्यों न हो, जीतने के चांस बढ़ जाते हैं, क्योंकि वोट बैंक बिखरने से बच जाता है। गठबंधन की जीत से केंद्र में भी पार्टियों का दबदबा बढ़ता है। लेकिन भारतीय राजनीति ऐसे उदाहरणों से पटी पड़ी है, जब बेमेल गठबंधन भी हुए और ज्यादा दिनों तक नहीं टिक पाए। जैसे, माया और मुलायम का साथ आना। मायावती और बीजेपी का साथ।

कर्नाटक में बीजेपी और जेडीएस का जुड़ाव। सिक्किम जैसे राज्य से बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है, जहां कांग्रेस और भाजपा एक हो गए, क्योंकि उन्हें सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट से हाथ मिलाना था। यह नई तरह की राजनीति है। एकदम नए विचारों वाली। जिसके नारों में जनता का विकास और गठबंधन को उसकी मंजूरी है लेकिन जब यही गठबंधन टूटता है तो जनता को ब्रेकिंग न्यूज मिलती है। तब उसकी राय महत्वपूर्ण नहीं रह जाती। साफ है कि राजनीतिक पार्टियों के बीच चुनाव-पूर्व और बाद के गठबंधन न केवल भविष्य में होते रहेंगे, बल्कि उसके साथ-साथ सहयोग की राजनीति भी चलती रहेगी। ऐसे में सवाल तो उठता ही है कि ये रिश्ता क्या कहलाता है।

डेमोक्रेसी की बेहतरी के लिए ऐसे रिश्ते अच्छे

एक्सपर्ट राय
कोटा नीलिमा

प्रसिद्ध राजनीतिक लेखिका एवं रिसर्चर

मेरे हिसाब से गठबंधन सरकारों का बहुत ही महत्वपूर्ण रोल होता है। मैंने इस संबंध में कई तरह की रिसर्च भी की हैं। अगर एक पार्टी पूर्ण बहुमत से सत्ता में आती है तो उसके लिए अलोकतांत्रिक कदम उठाए जाने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं और उसे पांच वर्षों के लिए मनमानी करने की छूट मिल जाती है। यदि सरकार अनेक पार्टियों के सहयोग से बनती है तो वह अपने सहयोगी दलों को नजरंदाज नहीं कर सकती। उसे मजबूरन ही सही अपने कार्यों की समीक्षा करनी पड़ती है, फैसले भी वापस लेने पड़ते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि गठबंधन सरकार देश/राज्य के चहुंमुखी विकास में सहायक होती है। जरूरत है सभी घटक दल अपने स्वार्थ से अधिक देश हित में सोचें। हमने अपने यहां स्वयं देखा है जब तक एक दलीय व्यवस्था रही कुछ राज्य बहुत पिछड़ गए। विभिन्न राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारें बनने के बाद ही सभी राज्यों छतीसगढ़ , मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, झारखंड, बिहार इत्यादि का विकास शुरू हुआ। मेरा मानना है कि राज्यों के छोटे दल वहां के लोगों और समुदायों को प्रतिधित्व करते हैं जो राष्ट्रीय दल नहीं कर पाते हैं क्योंकि बड़े दलों का एजेंडा बड़ा लंबा चौड़ा होता है और वह वर्गों या समुदायों का उस हिसाब से प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। लेकिन इसके लिए सबसे जरूरी बात यह है कि ऐसे गठबंधन से हमारी डेमोक्रेसी बेहतर होनी चाहिए। लेकिन अगर यह सिर्फ सत्ता में आने का जरिया बनता है तो यह बहुत ही गलत है। ऐसे दल ऐसा करके अपने ही लोगों के साथ अन्याय करते हैं, राष्ट्रीय दलों को भी कोई विकल्प नहीं दे पाते। क्षेत्रीय दल आखिरकार विकल्प के रूप में ही तो राष्ट्रीय दल के साथ आते हैं। एक पार्टी की पकड़ सत्ता में नहीं हो पा रही तभी तो गठबंधन बना है। मैं साफ कहना चाहूंगी कि अगर मुद्दों की राजनीति करने की बजाय छोटे दल केवल सत्ता पाने के लिए लड़ते हैं तो ऐसा करके वह खुद को ही खत्म कर लेते हैं। क्योंकि अवसरवाद की राजनीति की जिंदगी ज्यादा देर नहीं चलती।

इंफोग्राफिक

यूपी को कम ही पसंद आया है ऐसा साथ

1991
में 221 सीटें जीतने वाली बीजेपी 1993 में सिर्फ 177 का आंकड़ा छू पाई, उसे सपा-बसपा गठबंधन से मुंह की खानी पड़ी।

2002
में भाजपा ने रालोद, अपना दल, जदयू से हाथ मिलाया और 320 सीटों पर चुनाव लड़ा, पर 88 ही जीत पाई।

2007
में भाजपा ने फिर अपना दल से गठबंधन किया। 37 सीटें उसे दीं, खुद 350 पर लड़ी, लेकिन 51 सीटें ही जीत पाई।

2012
में भी भाजपा ने जनवादी सोशलिस्ट पार्टी को साथ लिया पर किसी पार्टी को फायदा नहीं हुआ।

1996
में कांग्रेस ने बसपा-रालोद संग चुनाव लड़ा, पार्टी को वोट तो 29.13 फीसदी मिले पर सीटें 33 हाथ आईं।

2002
में कांग्रेस ने अकेले कोशिश की। उसका दलित वोट बैंक बसपा के साथ चला गया पार्टी 25 सीटों पर सिमट गई।

1991
में 12 सीटों तक सीमित रही बसपा को गठबंधन का जबरदस्त फायदा हुआ। 1996 में उसने कांग्रेस का हाथ थामा तो 67 सीटें जीतीं।

2017
में कांग्रेस की दोस्ती की पहल बसपा ने ठुकरा दी। शायद इसलिए, जैसे उसने कांग्रेस का वोट बैंक कब्जाया, कांग्रेस भी वही कर सकती है।

गठबंधन भले तात्कालिक फायदे का सौदा हो लेकिन यूपी की राजनीति में जनता ने इसे कम ही स्वीकार किया है। कांग्रेस इसकी सबसे बड़ी भुक्तभोगी रही है, उसने जब भी किसी दल से हाथ मिलाया। हाथ से सत्ता फिसल गई। हालांकि कुछ प्रयोग सफल भी हुए। आइए, आंकड़ों की भाषा में यूपी की सियासत में गठबंधन के परिणामों को समझने की कोशिश करें

म्हारे छोटे बावड़ा हो गए हैं...

देश में राजनीतिक दलों के गठबंधन की चर्चा कहीं हो या न हो लेकिन सोशल मीडिया में इस पर खूब वार होते हैं। इसकी बनगी है हाल के कुछ गठबंधन पर यूजर्स की टिप्पणियां। एक यूजर ने गठबंधन पर यूं तंज कसा, 'भारत की राजनीति में गठबंधन की हवा जिस वेग से चली है, इससे यही लगता है कि आने वाले समय में चुनावा आयोग को 'गठबंधन आयोग' के नाम से एक नया विभाग खोलना पड़ेगा। एक ने यूं मजा लिया, 'मुलायम ने सोनिया गांधी से फोन पर कहा कि म्हारे छोरे बावड़ा हो गए हैं आप ही कुछ समझाइए। सोनिया बोलीं, लड़कपन में अक्सर लोग फिसल जाते हैं। अब हमें ही कुछ करना पड़ेगा।' एक यूजर ने लिखा, 'जब अखिलेश यादव यूपी का विकास कर सकते हैं तो कांग्रेस से गठबंधन क्यों? राहुल गांधी खुद अपना विकास नहीं कर पाए तो एक अन्य ने लिखा, 'राहुल गांधी ने अपनी पार्टी की सपा से गठबंधन के बाद कहा कि हमारा रिश्ता गंगा-यमुना की तरह पवित्र है। कायदे से देखा जाए तो यह रिश्ता कांग्रेस को सरस्वती होने से बचाएगा।' वहीं दूसरे यूजर ने लिखा, 'राहुल गांधी सीएम अखिलेश की साइकिल भी चलना चाहते हैं और उनके राज्य का किसान बनकर लाभ लेने के फिरक में भी है।' जबकि एक अन्य ने कहा, 'गठबंधन में झुकने के बाद अखिलेश के साथ संयुक्त प्रेस वार्ता में यूपी के सीएम जैसी पोशाक में पहुंचने पर राहुल गांधी ने कहा कि कोई दबाव नहीं कपड़ों का रंग मैने ही चुना था।' एक यूजर ने ऐसे चुटकी ली, राहुल गांधी-इंडिया की जीत में किसका रोल था। जी आशीष नेहरा का। राहुल गांधी-क्या उनसे गठबंधन हो सकता है। मुलायम-कांग्रेस-सपा गठबंधन से नाराज हूं, कुछ काम न करूंगा। अखिलेश-सच पापा, अपने कहे पे कायम रहना आप,बस यही मैं चाहता हूं। एक फेसबुक पेज के मुताबिक, 'उद्धव ठाकरे ने भारतीय टीम के नागपुर के मैच में ढीली पड़ने को भाजपा-शिवसेना के बीच दरार का असर बताया।' एक शख्स ने बिहार में लालू और नीतिश के गठबंधन वाली सरकार का हवाला देते हुए ट्वीट किया, 'वोडाफोन-आइडिया ने इस लिए गठबंधन किया है ताकि जियो को कड़ी टक्कर दे सके।'

साइबर संसार

– इंद्रजीत यादव